प्रतिहार वंश

[PRATIHARA DYNASTY]

कन्नौज की प्रतिष्ठा की पुनःस्थापना गुर्जर-प्रतिहार-वंश ने की जिसने **कन्नौज** को अपनी राजधानी बनाकर उत्तर-भारत के अन्तिम बड़े साम्राज्य का निर्माण किया। कुछ इतिहासकारों ने गुर्जर-प्रतिहारों को विदेशी माना है जो हूणों के साथ भारत में आये और पंजाब, राजपूताना तथा गुजरात में फैल गये। परन्तु आधुनिक समय में इस विचार को इतिहासकार स्वीकार नहीं करते। यह अधिक विश्वसनीय माना जाता है कि जिस प्रकार मालव व्यक्तियों के निवास-स्थान को मालवा पुकारा जाने लगा, उसी प्रकार गुर्जर भी एक भारतीय कुल था और जहाँ उसने निवास किया वह सम्पूर्ण प्रदेश गुर्जर-प्रदेश कहलाया।

छठी सदी के मध्य में **हरिचन्द्र** ने राजपूताना में आधुनिक जोधपुर के निकट इस वंश की स्थापना की किन्तु वंश का वास्तविक प्रथम महत्वपूर्ण राजा नागभट्ट प्रथम था जिसने अरबों से लोहा लिया और पश्चिमी भारत में एक शक्तिशाली राज्य की स्थापना की। हरिचन्द्र ब्राह्मण था। उसकी एक पत्नी ब्राह्मणी तथा दूसरी क्षत्राणी थी। उसकी ब्राह्मण-पत्नी से उत्पन्न पुत्र प्रतिहार-ब्राह्मण कहलाये और उसकी क्षत्री-पत्नी से उत्पन्न पुत्रों ने प्रतिहार-राजवंश का निर्माण किया। हरिचन्द्र के चार पुत्र थे जिन्होंने विभिन्न स्थानों पर शासन किया। उन्हीं में से एक ने उज्जयनी में राज्य किया।

नागभट्ट (730 – 756 ई.)

हरिचन्द्र और उसके विभिन्न उत्तराधिकारियों ने जोधपुर, भड़ौंच, नान्दीपुरी आदि स्थानों पर शासन स्थापित किया परन्तु प्रतिहारों की श्रेष्ठता को स्थापित करने का कार्य उसके वंशज और उज्जयनी के शासक नागभट्ट प्रथम ने आरम्भ किया। सम्भवतया नागभट्ट ने 730-756 ई. के मध्य के समय में राज्य किया। नागभट्ट ने जोधपुर, भड़ौंच और नान्दीपुरी की गुर्जर-प्रतिहार शाखाओं पर अपनी श्रेष्ठता को स्थापित किया और अरबों को परास्त करके यश

प्राप्त किया। नागभट्ट ने गुजरात से लेकर ग्वालियर तक एक बड़ा राज्य स्थापित किया और अरबों के आक्रमणों से इस प्रदेश की रक्षा की। अरब इतिहासकार **वलाधुरी** के विवरण से ज्ञात होता है कि खलीफा हशम के सेनापति जुनेद ने भारत में महत्वपूर्ण विजय प्राप्त की लेकिन उसके दुर्बल उत्तराधिकारी सेनापति तमिम के समय में अरबों को कई स्थानों से हटना पड़ा। यह अरबों के विरुद्ध नागभट्ट प्रथम की सफलताओं के कारण सम्भव हुआ था। इस प्रकार, नागभट्ट ने प्रतिहार-वंश की श्रेष्ठता की शुरूआत की। सम्भवतया, नागभट्ट को राष्ट्रकूट-शासक दन्तिदुर्ग से भी युद्ध करना पड़ा। वह उससे पराजित हुआ। परन्तु दन्तिदुर्ग की उत्तर-भारत की विजय अस्थायी सिद्ध हुई और नागभट्ट ने अपने उत्तराधिकारी को एक बड़ा राज्य सौंपा जिसमें गुजरात, मालवा और राजपूताना का मुख्य भाग सम्मिलित था।

वत्सराज (770 – 805 ई.)

नागभट्ट प्रथम के पश्चात् उसके भतीजों कक्कुक और देवराज ने शासन किया। परन्तु उनके बारे में कुछ अधिक ज्ञान प्राप्त नहीं होता। देवराज के पश्चात् उसका पुत्र वत्सराज सिंहासन पर बैठा जो एक बड़ा शासक हुआ। वत्सराज के शासन का ज्ञान हमें ग्वालियर-अभिलेख तथा जैन-ग्रन्थ *कुवल्यमाला* और **जिनसेन** रचित *हरिवंशपुराण* से प्राप्त होता है। वत्सराज ने मध्य-राजपूताना और उत्तर-भारत का कुछ भाग भण्डी-राजवंश से छीन लिया। उसके पश्चात् उसने कन्नौज के राजा इन्द्रायुध को परास्त करके मध्य-देश में अपनी शक्ति का विस्तार किया। इन्द्रायुध ने उसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया। परन्तु कन्नौज की सत्ता के प्रश्न को लेकर उसका संघर्ष पाल-शासक धर्मपाल और राष्ट्रकूट-शासक ध्रुव से हुआ। वत्सराज ने धर्मपाल को परास्त करने में सफलता पायी परन्तु वह सम्राट ध्रुव से परास्त हो गया। ध्रुव ने उत्तर-भारत पर आक्रमण करके दोआब में वत्सराज को पराजित किया और बाद में धर्मपाल को भी परास्त करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया। ध्रुव से परास्त होने के पश्चात्, सम्भवतया, वत्सराज का राज्य राजपूताना तक सीमित रह गया।

नागभट्ट द्वितीय (805 – 833 ई.)

वत्सराज के पश्चात् उसका पुत्र नागभट्ट द्वितीय प्रतिहार-सम्राट बना। उसने अपने राजवंश की खोयी हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। विभिन्न अभिलेखों से यह स्पष्ट होता है कि उसने आन्ध्र, सैन्धव, विदर्भ और कलिंग के राजाओं को परास्त किया। उसने उत्तर में मत्स्य, पूर्व में वत्स और पश्चिम में तुरुष्कों (मुसलमानों) को परास्त किया। उसके पश्चात् उसने कन्नौज के शासक चक्रायुध को परास्त करके कन्नौज पर अधिकार कर लिया। पाल-शासक धर्मपाल ने इन्द्रायुध को पराजित करके उसके भाई चक्रायुध को अपनी अधीनता में शासक बना दिया था। इस कारण उसका संघर्ष धर्मपाल से हुआ। इस संघर्ष में उसे अपने अधीन जोधपुर के कक्का-प्रतिहारों, दक्षिणी काठियावाड़ के चालुक्यों और (मेवाड़ के) गुहिलों से सहायता प्राप्त हुई और उसने धर्मपाल को परास्त करके उसकी सीमाओं में मुंगेर (बिहार) तक घुसने में सफलता पायी। परन्तु नागभट्ट द्वितीय लम्बे समय तक इस सफलता का उपभोग न कर सका। राष्ट्रकूट-शासकों से उसका परम्परागत संघर्ष जारी था। इस अवसर पर राष्ट्रकूट-शासक गोविन्द तृतीय ने उत्तर-भारत पर आक्रमण किया। धर्मपाल और चक्रायुध ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने ही गोविन्द तृतीय को अपने शत्रु नागभट्ट द्वितीय के विरुद्ध उत्तर-भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था। इसके अतिरिक्त राष्ट्रकूट-शासक स्वयं भी उत्तर-भारत में अपनी सत्ता को स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील था। नागभट्ट द्वितीय और गोविन्द का युद्ध 809-810 ई. के लगभग हुआ।

इस युद्ध में नागभट्ट द्वितीय की पराजय हुई। परन्तु गोविन्द का उत्तर-भारत में स्थायी रूप से रहने का लक्ष्य न था। वह दक्षिण-भारत वापस चला गया और उसके पश्चात् प्रायः आधी शताब्दी तक राष्ट्रकूट-शासक उत्तर-भारत की ओर कोई ध्यान न दे सके। परन्तु मालवा और गुजरात प्रतिहारों के हाथ से निकलकर राष्ट्रकूटों के हाथों में चले गये, प्रतिहार-शक्ति दुर्बल हुई और पाल-शासक धर्मपाल और उसके पुत्र देवपाल को अपनी शक्ति में वृद्धि करने का अवसर प्राप्त हुआ। परन्तु इस पराजय ने नागभट्ट द्वितीय की शक्ति को पूर्णतया नष्ट नहीं किया। अपने पश्चिमी साम्राज्य को खोकर नागभट्ट द्वितीय ने पूर्व में अपनी शक्ति को पुनः स्थापित किया। राजपूताना, काठियावाड़ और पूर्व में ग्वालियर तक तथा सम्भवतया कालिंजर और कन्नौज तक उसने अपने राज्य का विस्तार करने में सफलता पायी थी।

रामभद्र (833 – 836 ई.)

नागभट्ट द्वितीय का पुत्र और उत्तराधिकारी रामभद्र दुर्बल शासक सिद्ध हुआ। उसने प्रायः तीन वर्ष शासन किया। उसके समय में पाल-शासक देवपाल ने प्रतिहारों की शक्ति को पर्याप्त क्षति पहुँचाई। परन्तु रामभद्र का पुत्र और उत्तराधिकारी मिहिरभोज एक शक्तिशाली सम्राट हुआ जिसने प्रतिहारों की शक्ति और प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया।

मिहिरभोज (836 – 885 ई.)

भोज ने कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया और उसके निकटस्थ क्षेत्रों तथा राजपूताना में अपनी स्थिति को दृढ़ किया जो रामभद्र के समय में दुर्बल हो गयी थी। प्रारम्भ के कुछ वर्षों में ही भोज ने मालवा, राजपूताना और मध्य-देश में अपनी स्थिति को दृढ़ कर लिया। परन्तु उसे शीघ्र ही बंगाल के पाल-शासक देवपाल का मुकाबला करना पड़ा। इस युद्ध में भोज की पराजय हुई और पूर्व में उसकी प्रगति रोक दी गयी। भोज ने राष्ट्रकूट-शासकों के आन्तरिक झगड़ों से लाभ उठाने का प्रयत्न किया और 845-860 ई. के बीच किसी समय में दक्षिण-भारत पर आक्रमण किया। परन्तु गुजरात शाखा के राष्ट्रकूट- शासक ध्रुव ने उसे परास्त कर दिया। भोज को किसी समय में कलचुरि-वंश के शासक कोक्कल (845-880 ई.) ने भी परास्त किया। उसकी इन पराजयों से लाभ उठाकर जोधपुर के प्रतिहार-शासक भी स्वतन्त्र हो गये और राजपूताना पर उसका प्रभाव दुर्बल हो गया। इस प्रकार, भोज को प्रारम्भ में बहुत असफलताएँ प्राप्त हुईं।

अपनी इन विभिन्न असफलताओं के बावजूद भी भोज की महत्वाकांक्षाओं में कोई कमी नहीं आयी। उसने उचित समय की प्रतीक्षा की। बंगाल के शासक देवपाल की मृत्यु और उसके दुर्बल उत्तराधिकारियों ने उसे पूर्व की ओर अपनी स्थिति को दृढ़ करने का अवसर प्रदान किया तथा तत्कालीन राष्ट्रकूट-शासक अमोघवर्ष की शान्तिप्रिय नीति ने उसे दक्षिण-भारत की ओर बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया। सर्वप्रथम उसने पाल-शासक नारायनपाल को परास्त करके उसके राज्य के पश्चिमी भाग को अपने अधिकार में कर लिया। तत्पश्चात् उसने राष्ट्रकूट-शासकों की ओर ध्यान दिया। उनसे उसका संघर्ष कृष्णा द्वितीय (878-914 ई.) के समय में हुआ। उसने नर्मदा नदी के तट पर कृष्णा द्वितीय को परास्त करके भागने के लिए बाध्य किया और मालवा पर अपना अधिकार कर लिया। उसके पश्चात् उसने गुजरात के काठियावाड़ प्रदेश को जीता। भोज को उज्जयनी के निकट एक और युद्ध कृष्णा द्वितीय से करना पड़ा जिसमें उसकी पराजय हुई। यह कहा जाता है कि सम्भवतया इस युद्ध के पश्चात् भोज ने मालवा को खो दिया। परन्तु यह स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं है।

इस प्रकार, भोज ने एक शक्तिशाली राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। काठियावाड़ पर उसका अधिकार रहा, उत्तर-पश्चिम में उसका साम्राज्य पंजाब तक फैला हुआ था, सम्भवतया सम्पूर्ण मालवा और अवध उसके अधिकार में थे, बिहार के कलचुरी और बुन्देलखण्ड के चन्देलों ने उसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था और राजपूताना में उसने अपनी स्थिति दृढ़ कर ली थी। पेहोवा अभिलेखों के अनुसार करनाल जिला भी उसके राज्य में था। बलवर्मन एवं अवनि वर्मन के ऊना दान-पत्रों के अनुसार सौराष्ट्र मण्डल राजा भोज की अधीनता में था। पश्चिम में सिन्धु तक उसके राज्य का विस्तार हो चुका था। भोज ने रामभद्र से एक कमजोर राज्य प्राप्त किया था परन्तु अपनी शक्ति के आधार पर उसका विस्तार कर उसे विशाल एवं शक्तिशाली साम्राज्य बना दिया। **डॉ. आर. सी. मजूमदार** ने लिखा है : "इस प्रकार, भोज ने उत्तर-भारत में एक शक्तिशाली साम्राज्य का निर्माण किया जिसके लिए वत्सराज और नागभट्ट ने निष्फल प्रयत्न किये थे। उसने कन्नौज को पुनः एक बार वैभवपूर्ण नगर बना दिया।"[1]

महेन्द्रपाल प्रथम (885 – 910 ई.)

मिहिरभोज के पश्चात् उसका पुत्र महेन्द्रपाल सिंहासन पर बैठा। यद्यपि कल्हण की *राजतरंगिणी* से यह आभास होता है कि कश्मीर के शासक शंकरवर्मा ने महेन्द्रपाल से पंजाब का कुछ भाग छीन लिया था, परन्तु यह पूर्णतया प्रमाणित नहीं है। महेन्द्रपाल ने अपने पिता द्वारा प्राप्त साम्राज्य को केवल सुरक्षित ही नहीं रखा अपितु उसका विस्तार भी किया। उसके राज्य के दूसरे वर्ष से लेकर नवें/उन्नीसवें वर्ष तक के अभिलेख बंगाल और बिहार से मिलते हैं। उसने पाल-शासकों से मगध और उत्तरी बंगाल का कुछ भाग छीन लिया। उसके शासनकाल में प्रतिहार शक्ति अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई और प्रतिहार सम्राज्य गंगा के मुख से लेकर रेवा के मुख तक अर्थात् हिमालय से विन्ध्य पर्वत तक और लगभग पूर्वी समुद्र से पश्चिमी समुद्र तक फैला हुआ था।

महीपाल (912 – 944 ई.)

महेन्द्रपाल के पश्चात् उसका पुत्र भोज द्वितीय सिंहासन पर बैठा था। परन्तु थोड़े समय पश्चात् उसके सौतेले भाई महीपाल ने उसे हटाकर सिंहासन पर अधिकार कर लिया। महीपाल के समय में एक बार फिर राष्ट्रकूट-सम्राट इन्द्र तृतीय ने उत्तर- भारत पर आक्रमण किया। सम्भवतया 915-918 ई. के बीच यह आक्रमण हुआ और इन्द्र ने महीपाल को परास्त करके न केवल कन्नौज को लूटा अपितु प्रयाग तक महीपाल का पीछा किया। परन्तु पहले की भाँति राष्ट्रकूट अब भी उत्तर-भारत की विजयों का संगठन न कर सके और वापस लौट गये। महीपाल ने पुनः अपनी स्थिति को दृढ़ किया और अपने खोये हुए साम्राज्य के पर्याप्त भाग पर अधिकार करने में सफलता पायी। परन्तु उसकी कठिनाइयों से पाल-शासकों ने लाभ उठाया और उसके पूर्वी राज्य के कुछ भाग पर अधिकार कर लिया। राष्ट्रकूटों ने एक बार फिर (कृष्णा तृतीय के शासन-काल में) महीपाल के अन्तिम समय में (940 ई. के लगभग) उत्तर-भारत पर आक्रमण किया और कालिंजर तथा चित्रकूट के दुर्गों पर अधिकार कर लिया।

---

1 "Bhoja, thus, consolidated a mighty empire in Northern India for which Vatsraja and Nagabhatta had fought in vain, and raised Kannauj once more to the position of an imperial city."

—R. C. Majumdar : *The Age of Imperial Kannauj.*

यद्यपि महीपाल ने अपने राज्य के पर्याप्त बड़े भाग को पुनः विजय करने में सफलता पायी परन्तु राष्ट्रकूट-आक्रमणों ने प्रतिहारों के सम्मान को विशेष क्षति पहुँचायी जिससे वे आगे कभी भी न सँभल सके और बाद में उनके अधीन सामन्तों, जैसे चन्देल, परमार, चेदि आदि को अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने का अवसर मिल सका।

महीपाल के उत्तराधिकारी और प्रतिहार-साम्राज्य का पतन (944 – 1036 ई.)

महीपाल के पश्चात् उसका पुत्र महेन्द्रपाल द्वितीय सिंहासन पर बैठा जिसने 945-46 ई. तक शासन किया। उसके पश्चात् प्रतिहार-राजवंश में पारस्परिक झगड़े आरम्भ हो गये और देवपाल, विनायकपाल द्वितीय, महीपाल द्वितीय तथा विजयपाल नाम के चार शासकों ने कन्नौज पर राज्य किया। उनमें से कोई भी योग्य सिद्ध नहीं हुआ। उनके पारस्परिक झगड़ों और अयोग्यता का लाभ उनके सामन्तों ने उठाया। देवपाल (948 ई.) के समय के प्रतिहारों का साम्राज्य खण्डित होने लगा। 963 ई. में इन्द्र तृतीय ने पुनः आक्रमण करके उनकी शक्ति को एक और धक्का लगाया जिससे उनका साम्राज्य कई स्वतन्त्र राज्यों में विभाजित हो गया। उस साम्राज्य के भागों से अन्हिलवाड़ (गुजरात) के चौलुक्य, जेजाकभुक्ति के चन्देल, ग्वालियर के कच्छपघाट, चेदि के कलचुरि, मालवा के परमार, दक्षिणी राजपूताना के गुहिल और शाकम्भरी के चौहान राजवंश के स्वतन्त्र राज्यों का निर्माण हुआ। इस कारण 10वीं सदी के अन्त में जब राज्यपाल कन्नौज का सम्राट बना तब उसका राज्य बहुत छोटा रह गया था। उस समय तक प्रतिहारों की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। राज्यपाल के समय में भारत पर तुर्की आक्रमण आरम्भ हुए। उनका विरोध उत्तर-पश्चिम का हिन्दूशाही अथवा ब्राह्मणशाही राज्य कर रहा था। राज्यपाल ने उसके शासक जयपाल को 991 ई. में सुबुक्तगीन के विरुद्ध सहायता दी और 1008 ई. में जयपाल के पुत्र आनन्दपाल को महमूद गजनवी के विरुद्ध सहायता दी। परन्तु हिन्दूशाही-राज्य महमूद गजनवी के आक्रमणों को रोकने में असफल रहा और उसने भारत में प्रवेश करके 1018 ई. में कन्नौज पर आक्रमण किया। राज्यपाल ने महमूद का मुकाबला नहीं किया अपितु युद्ध से पहले ही भाग खड़ा हुआ। महमूद के वापस जाने के पश्चात् राज्यपाल के अपमानजनक तरीके से भाग खड़े होने से असन्तुष्ट होकर चन्देल शासक गण्ड ने अपने पुत्र विद्याधर देव को कन्नौज पर आक्रमण करने के लिए भेजा जिसने राज्यपाल को मार दिया और उसके पुत्र त्रिलोचनपाल को कन्नौज की गद्दी पर बैठा दिया। 1019 ई. में महमूद ने त्रिलोचनपाल पर आक्रमण करके उसे परास्त कर दिया। सम्भवतया, त्रिलोचनपाल 1027 ई. तक जीवित रहा। उसका उत्तराधिकारी और प्रतिहार-वंश का अन्तिम शासक यशपाल हुआ जो सम्भवतया 1036 ई. तक जीवित रहा।

इस प्रकार महान् प्रतिहार-राजवंश का अन्त हुआ। वास्तव में देखा जाय तो महीपाल के समय में प्रतिहारों की शक्ति दुर्बल होनी आरम्भ हुई थी और उसके उत्तराधिकारियों के समय में नष्ट हो गयी। वस्तुतः 10वीं सदी के बाद के चरण में ही प्रतिहार-साम्राज्य नष्ट हो गया था यद्यपि उसका नाम कुछ समय और चला।

प्रतिहार-साम्राज्य का महत्व

डॉ. आर. सी. मजूमदार ने भारतीय इतिहास में प्रतिहार-वंश के महत्व को बहुत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया है। उनके अनुसार अन्तिम साम्राज्य-निर्माता का जो गौरव सम्राट हर्ष को दिया गया है, वह एक बड़ी भूल है। उसका वास्तविक श्रेय प्रतिहार-सम्राटों को है जिन्होंने लगभग 100 वर्ष तक उत्तर-भारत में उससे कहीं अधिक बड़ा साम्राज्य स्थापित करके रखा। प्रतिहारों में वत्सराज, नागभट्ट द्वितीय, मिहिरभोज और महेन्द्रपाल जैसे योग्य शासक हुए

जिन्होंने पाल और राष्ट्रकूट-सम्राटों के निरन्तर विरोध के बावजूद भी उत्तर-भारत में एक बड़ा साम्राज्य स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। प्रतिहारों का एक महत्वपूर्ण कार्य मुसलमानों को भारत के अन्दर प्रवेश करने से रोकना था। **एलफिन्स्टन** और उसके बाद के सभी इतिहासकारों ने इस बात पर आश्चर्य प्रकट किया है कि अरबों की विशाल शक्ति अपनी चरम सीमा पर होते हुए भी भारत में प्रगति करने में क्यों असफल हुई। इसका मुख्य कारण प्रतिहारों की शक्ति थी। प्रतिहारों ने अरबों को सिन्ध से आगे नहीं बढ़ने दिया। अरबों ने स्वयं प्रतिहार-सम्राटों के वैभव और शक्ति की प्रशंसा की है। अरब-यात्री **सुलेमान** ने मिहिरभोज को **इस्लाम धर्म का सबसे बड़ा शत्रु** पुकारा था। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में अरबों की असफलता का मुख्य कारण प्रतिहारों की शक्ति थी। इसके अतिरिक्त, अपनी अवनत स्थिति में भी सम्राट राज्यपाल ने हिन्दूशाही सम्राट जयपाल और आनन्दपाल को सुबुक्तगीन और महमूद गजनवी के विरुद्ध सहायता भेजी थी। निस्सन्देह, राज्यपाल महमूद गजनवी के मुकाबले में स्वयं भाग खड़ा हुआ था। परन्तु उसके पहले के कार्य यह सिद्ध करते हैं कि वह मुसलमानों के विरुद्ध प्रतिहारों की परम्परागत नीति का पालन करने के लिए उद्यत था। प्रतिहारों ने मुसलमानी आक्रमणों के प्रति सचेत रहकर और एक बड़े साम्राज्य को स्थापित करके भारत के चक्रवर्ती सम्राटों के उत्तरदायित्व को निभाया और यही उनका सबसे बड़ा महत्व रहा।